International Journal of Education and Science Research
Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-7, Issue-4 August- 2020 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

उत्तर प्रदेश में पूर्व माध्यमिक स्तर पर बेसिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में संक्षिप्त विश्लेषण

[1]Anjali Sharma, [2]Dr Priyanka Gupta
[1]Research Scholar, [2]Supervisor
[1,2]Malwanchal University, Indore (M.P.)

सार–

किसी भी राष्ट्र की उन्नति उस राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करती है। और किसी भी राष्ट्र काभविष्य और उन्नति का पथ शिक्षा की प्रथम सीढी प्राथमिक शिक्षा है। जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुॅचाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं हैं। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जो स्थान प्राथमिक शिक्षा का है। उतना और किसी दूसरी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश के समस्त निवासियों से होता है।

प्रस्तावना–

शिक्षा एक अत्याधिक विवादस्पद विषय रहा है। व्यक्ति एवं समाज संदर्भ में इसे सदैव प्रशंसा अथवा दोष का भागी माना जाता रहा। 'कैसी है' और 'कैसी होनी चाहिये' ने सदैव शिक्षा को विवाद ग्रस्त रखा है। इसके फलस्वरूप वर्तमान में असन्तुष्टि की स्थिति एक स्थाई स्थिति का रूप धारण करती जा रही है। इस स्थिति के लिए उत्तरदायी मूल्य रूप से शिक्षा के अर्थ में समस्या का न होना है। प्रत्येक विवाद–कर्ता इसके अर्थ को एक विभिन्न विशिष्ट प्रारूप में देखता है, क्योंकि आदिकाल से वर्तमान तक इसके अर्थों में इतना परिवर्तन आया है कि इसकी अवधारणा एक भ्रामक रूप ले चुकी है। इस कारण शिक्षा की अवधारणा का एक स्पष्ट प्रारूप प्रस्तुत करना आवश्यक है। शिक्षा का सर्वाधिक प्रयुक्त अर्थ इस शिक्षण एवं प्रशिक्षण प्रक्रिया से है। जिसे विद्यालय में प्रयुक्त किया जाता है। गत कुछ वर्षों से एक अन्य अर्थ भी प्रयोग में आने लगा है जिसके अनुसार शिक्षा को निर्देश एवं प्रशिक्षण की कला अथवा विज्ञान अथवा दोनों के रूप में देखा जाता है। विश्वविद्यालयों एवं शिक्षक प्रशिक्षण विभागों में इसी अर्थ के संदर्भ में शिक्षा को लिया जाता है। उपरोक्त दृष्टिकोण स्पष्ट होते हुए भी कुछ संदर्भों में भ्रामक है। परिणाम रूप में, विद्यालय में व्यतीत समय, व्यवहार का परिभार्जित रूप, आदि दृष्टिकोणों से विश्लेषण करने पर शिक्षा को अधिक स्पष्ट रूप में विकसित करने की आवश्यकता दृष्टिगत होती है। इसी प्रकार किसी वातावरण में शिक्षा प्राप्त की एवं उस शिक्षा का प्रारूप सर्वाधिक का अविधिक में से कैसा है, भी शिक्षा के अर्थ को भिन्नता देने के लिए उत्तरदायी हो जाता है। उपरोक्त के आधार पर यह अत्यन्त आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र की उचित व स्पष्ट अवधारणा विकसित की जाये।

शिक्षा की अवधारणा

वस्तुतः मानव मृत्युपर्यन्त सीखता रहता है एवं उसी के आधार पर विकासोन्मुख होता है। विद्यालय तो इस विकास को एक निश्चित दिशा ही प्रदान करता है, वस्तुत: विद्यालयी शिक्षा तो शिक्षा के व्यापक रूप के अन्तर्गत ही दी जाती है। संसार का प्रत्येक प्राणी जिस भी जाति में जन्म लेता है उसके मध्य ही अनेक प्रकार की क्रियायें सीखता है। यह क्रियायें केवल परिस्थियों के साथ समायोजन कर आत्म–रक्षा के कार्यो तक ही सीमित नहीं रहती है। वरन् अनुकूल परिस्थितियों के निर्माण करने की क्षमता का भी विकास करती है। यह निर्माण सुखवाद पर आधारित होता है। यह निर्माण क्षमता ही शिक्षा है। शिक्षा शब्द का प्रयोग तीन रूपों में किया जाता है। ज्ञान के लिए मानव के शारिरिक और मानसिक व्यवहार में परिवर्तन हेतु प्रक्रिया के लिए और पाठ्यचर्या के एक विषय के लिए। जहां शिक्षा शब्द का प्रयोग ज्ञान के लिए किया जाता है। तो समस्त ब्रह्मांड उसका विषय क्षेत्र होता है। इस ब्रह्मांड का प्रत्येक तत्य उसका अंग होता है। इस रूप में शिक्षा के अंगों की कोई सीमा नहीं होती है।

प्रस्तावना–

शिक्षा शब्द का दूसरा प्रयोग मनुष्य के व्यवहार में परिवर्तन करने वाली प्रक्रिया के लिये होता है। इस रूप में भी

उसका प्रयोग दो रूपों में होता है। व्यापक रूप में और समुचित रूप में। व्यापक रूप में शिक्षा प्रक्रिया के तीन अंग होते हैं– शिक्षक, शिक्षार्थी, एवं सामाजिक पर्यावरण। यह तीनों ही शैक्षिक तत्व या अंगों के रूप में महत्वपूर्ण है।

व्यापक एवं संकुचित दोनों अर्थों में शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। मानव कुछ शक्तियों को लेकर उत्पन्न होता है। भौतिक और सामाजिक पर्यावरण में इन शक्तियों का विकास होता है। और मनुष्य के व्यवहार तथा विचारों में विशेष प्रकार का परिवर्तन होता है। मनुष्य की सम्पूर्ण सभ्यता एवं संस्कृति का विकास उसके सामाजिक पर्यावरण में ही होता है। बिना सामाजिक पर्यावरण के शिक्षण प्रक्रिया असम्भव है। संकुचित अर्थ में शिक्षा केवल विद्यालय जीवन तक सीमित होती है, पर अपने वास्तविक अर्थ में यह जन्म से मरण तक चलती है। मनुष्य जन्म से ही सीखता रहता है एवं जीवन के प्रत्येक अनुभव के साथ कुछ न कुछ अर्जन करता रहता है। इस प्रकार सतत् निरन्तरता इसका लक्षण है। सामान्यतः शिक्षा की प्रक्रिया दो के मध्य चलती है। एक वह जो प्रभावित होता है और दूसरा वह जो प्रभावित करता है। इसके आधार पर जॉन एम्स ने शिक्षा को द्वि–ध्रुवीय प्रक्रिया कहा है। उनके अनुसार शिक्षा के दो ध्रुव हैंः– शिक्षार्थी एवं शिक्षक। जॉन डीवी ने भी शिक्षा के दो ही अंग माने हैं, उन्होंने इसको मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक नाम दिया है। कभी–कभी सामाजिक पर्यावरण को शिक्षा का तीसरा आधार मानने के कारण शिक्षा तीन ध्रुवीय, शिक्षार्थी, शिक्षक व पाठ्यक्रम हो जाती है।

मानव का जन्मजात व्यवहार पशुवत होता है। सामाजिक पर्यावरण में रह कर वह अपने व्यवहार में परिवर्तन करता है। परिवर्तन की इस क्रिया को ही शिक्षा कहा जा सकता है। इस प्रकार शिक्षा द्वारा मनुष्य अपना विकास तो करता ही साथ ही जान के हस्तान्तरण के द्वारा अगली पीढ़ी को भी विकसित होने का आधार प्रदान करता है। इस प्रकार जाति अथवा समाज की सभ्यता एवं संस्कृति विकसित होती है। कोई भी शिक्षा सामाजिक परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती है। सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप उसके उद्देश्य, पाठयक्रम व शिक्षण प्रक्रिया प्रभावित होती रहती है। यह प्रभाव शिक्षा को गतिशीलता प्रदान करता है।

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा–प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढी है जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं हैं। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जो स्थान प्राथमिक शिक्षा का है। उतना और किसी दूसरी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर देश के समस्त निवासियों से होता है। यह प्रत्येक कदम पर सभी व्यक्तियों को एकसाथ जोडकर चलने वाली प्रक्रिया के रूप में देखी जाती है ।

शिक्षा मानव समाज की संरचना एवं व्यक्ति के भावी जीवन के दिशा निर्देशन का मूल आधार है। अतः शिक्षा का स्वरूप इतना व्यापक होना आवश्यक है जिससे अपेक्षाओं एवं उद्देश्यों की प्रतिपूर्ति हो सके। पूर्व माध्यमिक स्तर पर शिक्षार्थी निश्चय ही ज्ञान एवं चिन्तन की ओर अग्रसर होकर विषय को गहनता से समझने में रूचि लेने लगता है। उसकी कल्पना–शक्ति का विकास होने लगता है तथा जीवन के प्रत्येक रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रबल होने लगती है। भाषा हमारी सम्पूर्ण अभिव्यक्ति का माध्यम है। इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र आदि कोई भी विषय क्यों न हो, भाषा के बिना उसका प्रकटीकरण सम्भव नहीं है। इसीलिए हमारे शिक्षा–क्रम में भाषा का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। जहाँ एक ओर भाषा अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन है, वहीं दूसरी ओर भाषा अपने देश एवं संस्कृति से परिचित कराती है। युगों से संचित ज्ञान–राशि का रसास्वादन हम भाषा के माध्यम से ही कर सकते हैं। भाषा के द्वारा ही अपने ज्ञान–विज्ञान को हम संचित रख सकते हैं। भाषा चरित्र–निर्माण का एक प्रमुख साधन है। इसकी एक झलक पाठ्यक्रम में मिलनी चाहिए। हमें भाषा के अध्यापन द्वारा अच्छे विचारों से अवगत होने में सहायता मिलती है और अच्छे विचार अच्छे चरित्र का निर्माण करते हैं और समाज की धारा को बदल देते हैं। मातृभाषा की पहुँच हमारे अर्न्तमन की गहराईयों तक होती है। इन्ही कारणों से शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि बालक को मातृभाषा के माध्यम के द्वारा ही शिक्षा दी जानी चाहिए। मातृभाषा के माध्यम से हम जन–जन में ज्ञान के सूर्य को अवतरित कर सकते हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारी मातृभाषा हिन्दी समूचे देश की राष्ट्रभाषा भी है। पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। पाठ्यक्रम निर्माण शैक्षिक प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह उद्देश्यों की प्रर्ति के लिए प्रारम्भिक एवं मूलभूत आधार होता है। पाठ्यक्रम

निर्माण के उपरान्त शिक्षाविदों के सम्मुख जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न होता है, वह यह है कि निर्धारित पाठ्यक्रम को शिक्षार्थियों तक कैसे पहुंचाया जाये तथा उनके लिये इसे कैसे ग्रह्य बनाया जाये। इसका उत्तर शिक्षार्थियों के लिए उपयुक्त अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में केवल कंठस्थ ज्ञान का ही उपयोग किया जाता था, किन्तु मानव ज्ञान के बढ़ते विशाल–भंडार तथा इसकी जटिलता के परिणामस्वरूप केवल मौखिक शिक्षण अब अपूर्ण सिद्व हो गया है। शिक्षण–अधिगम की सफलता के लिए अब परम्परागत अनुदेशनात्मक सामग्री के साथ–साथ अन्य कई प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग किया जा रहा है।

अनुदेशनात्मक सामग्री के रूप में सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली सामग्री पाठ्य–पुस्तकें हैं। पाठ्यक्रम की वास्तविक को पाठ्य पुस्तकों द्वारा ही विस्तार मिलता है, जिससे वह शिक्षक एवं छात्र दोनों के लिए सुगम हो पाता है। पाठ्य–पुस्तकें पाठयक्रम की पूरक होती हैं। पाठ्यक्रम का पारूप बिना पुस्तकों के अधूरा तथा अस्पष्ट होता है। किसी स्तर के पाठ्यक्रम के प्रारूप को समझने के लिए, पाठयक्रम की रूपरेखा के साथ पुस्तकों का भी उल्लेख किया जाता है। पाठयक्रम के स्वरूप के लिए पाठ्य–पुस्तकें भी प्रस्तावित की जाती हैं। उन पुस्तकों के अवलोकन से विभिन्न प्रकरणों का स्वरूप–बोध शिक्षक तथा विद्यार्थियों को होता है। परीक्षक भी प्रश्न–पत्रों के निर्माण के समय इन्हीं पुस्तकों की सहायता लेता है।

पाठ्य पुस्तकों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

मनुष्य में संग्रह की मूल प्रवृत्ति जन्मजात होती है। इसी मूल प्रवृत्ति के सन्तोष के लिए मनुष्य कुछ न कुछ वस्तुयें संग्रहीत करते रहते हैं। मनुष्य अपने ज्ञान एवं अनुभवों को भी संचित करता है। इसी से आज हमारे पास मानव–सभ्यता और संस्कृति के विकास से सम्बधित निधियाँ संचित हैं। पुस्तकें भी इन्ही संग्रहीत निधियों में से एक हैं। मनुष्य ने अपने अर्जित अनुभवों और ज्ञान को भावी संतति के लिये संचित रखने के लिये उसे लिपिबद्व किया है। यही लिपिब्द्व प्रयास आज हमें पुस्तकों के रूप में मिलता है। पुस्तकों द्वारा ज्ञान को संचित ही नहीं किया जाता है अपितु इन पुस्तकों के माध्यम से नई पीढ़ी को ज्ञान दिया जाता है।

पाठ्य पुस्तकों का एक ऐसा प्रकार हैं, जिनमें मौलिक और स्थायी महत्व की पुस्तकों से कुछ सामग्री चयन करके विविध स्तरों के विद्यार्थियों के लिए हम पुस्तकों के रूप में व्यवस्थित कर लेते हैं। शिक्षक अपने शिक्षण की तैयारी में इनका प्रयोग करता है तथा छात्र परीक्षा की तैयारी के लिए इनका अध्ययन करता है। इन पाठ्य पुस्तकों का विद्यार्थियों के लिये अत्यधिक महत्व होता है। पुस्तकें हमारे जीवन का अविच्छिन्न अंग बन चुकी हैं। स्त्री–पुरूष का जीवन पुस्तकों के अभाव में प्रायः शून्यवत् है। पुस्तकें हमारा जीवन हैं, प्राण–दायिनी शक्तियों का स्त्रोत हैं, दुख–सुख की संगिनी और मार्ग–दर्शिका हैं। पुस्तकों के अभाव में हम अतुल विचार और ज्ञान के उस प्रकाश पुंज से वंचित रह जायेगे जिसे हमारे शोध के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये जिस विधि एवं प्रक्रिया का प्रयोग किया जायेगा, उसका विवरण निम्नलिखित है :–

शोध के उद्देश्य

- एन0सी0ई0आर0टी0 द्वारा प्रकाशित पूर्व माध्यमिक स्तर की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों का मानकों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करना।
- मानकों के परिप्रेक्ष्य में उक्त दोनों पाठ्य–पुस्तकों की तुलना करना।
- पाठ्य–पुस्तकों के मानकों के संदर्भ में शिक्षकों की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन।
- एन0सी0ई0आर0टी0 व बेसिक शिक्षा परिषद की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों का मूल्यों का संदर्भ में अध्ययन करना।

अध्ययन की सीमायें

- यह अध्ययन कक्षा छठी, सातवीं तथा आठवीं की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों पर आधारित होगा।
- यह अध्ययन उत्तर प्रदेश क्षेत्र के पूर्व माध्यमिक विद्यालयों की बेसिक शिक्षा परिषद व एन0सी0ई0आर0टी0 की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य पुस्तकों पर किया जायेगा।

- प्रश्नावली के प्रशासन हेतु मेरठ जिले के पूर्व माध्यमिक स्तर के सामाजिक अध्ययन शिक्षकों का चयन किया जायेगा।

अध्ययन की आवश्यकता तथा महत्व

पूर्व माध्यमिक स्तर पर छात्र हिन्दी में लेखन एवं पठन की कुछ दक्षता प्राप्त कर लेता है तथा उसमें श्रवण एवं अभिव्यक्ति की भी कुछ क्षमता आ जाती है। अतः यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पूर्व माध्यमिक स्तर पर सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकों में भाषायी पक्ष के साथ ही साथ साहित्य पक्ष का समावेश भी महत्वपूर्ण है। इसी बात को ध्यान में रखते हुये शोध की आवश्यकता महसूस की गयी। यह जानना आवश्यक है कि वर्तमान पूर्व माध्यमिक है या नहीं। इस शोध अध्ययन में यह भी जानने का प्रयास किया जायेगा कि पूर्व माध्यमिक स्तर पर हिन्दी माध्यम की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकें मूलयों को निश्चित रूप से प्राप्त करती है या नहीं अथवा पाठ्य–पुस्तकों में शामिल पाठों में मूल्य निहित है या नहीं।

शोध विधि

किसी भी पुस्तक का मूल्यांकन सुचारु रूप से करने के लिये यह आवश्यक है कि मापदण्ड औरउसके विभिन्न घटकों को वस्तुनिष्ठता एवं सुस्पष्टता से परिभाषित कर लिया जाये। जितना अधि कइस ओर ध्यान दिया जायेगा उतना ही अधिक गहरा और पैना मूल्यांकन का स्तर होगा। मापदण्ड को सही प्रकार से निर्धारित करने के पश्चात् मूल्यांकनकर्ता के सामने मूल्यांकन की उपुर्यक्त प्रविधि को चुनने की समस्या उपस्थित होती है। पुस्तक–मूल्यांकन के लिये दो प्रमुख प्रविधियां प्रचलित है–तार्किक और प्रयोगात्मक, तथापि इन्हीं दो वर्गों के अन्तर्गत विशेषज्ञों ने कई अन्य प्रविधियां भी विकसित कर ली है। अपनी सुविधा एवं आवश्यकता के अनुसार शोधकर्ती ने प्रमुख रूप से तीन विधियों का प्रयोग किया है–(क) पाठ्य–सामग्री विश्लेषण विधि, (ख) सर्वेक्षण विधि तथा (ग) संख्यात्मक मान–निर्धारण पैमाना विधि।

पाठ्य–सामग्री विश्लेषण विधि

शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्य–वस्त विश्लेषण एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। इसका प्रयोग विशिष्ट गुणों के सम्प्रेषण के लिये किया जाता है। सम्प्रेषण किसी भी सामाजिक अन्तःक्रिया का एक अभिन्न अंग है। किसी भी प्रकार का सामाजिक संगठन, चाहे वह परिवार हो अथवा राष्ट्र, सम्प्रेषण के अीाव में छिन्न–भिन्न हो जायेगा। अतैव, सामाजिक अध्ययन के क्षेत्र में सम्प्रेषण सामग्री का अध्ययन एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक तकनीकी संकल्पना के अनुसार शिक्षण मात्र किसी पाठ्य–सामग्री के सम्प्रेषण को कहते हैं। सम्प्रेषण की अनेक विद्यायें हो सकती हैं, किन्तु मुख्यतः इन्हें दो भागों में बांटा जा सकता है।–लिखित एवं मौक्षिक। सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकें लिखित सम्प्रेषण के द्वारा बालकों को शिक्षित करती हैं। इस लिखित सम्प्रेषण की विषयवस्तु का विश्लेषण करके ही यह पता लगाया गया है कि कक्षा छः, सात एवं आठ की सामाजिक अध्ययन की पाठ्य–पुस्तकें किस सीमा तक हमारी अपेक्षाओं के अनुरूप बन पायी है।

सर्वेक्षण विधि

प्राचीनकाल में सामाजिक घटनाओं की विवेचना प्रायः दार्शनिक आधार पर होती थी, किन्तु उसमें व्यक्ति प्रधानता अर्थात् आत्मग्रस्तता तथा सैद्धान्तिक रूढ़िवादिता की संभावना विशेष थी। अर्तव, उसके स्थान पर आज सर्वेक्षण प्रणाली अधिक लोकप्रिय हो रही है। सर्वेक्षण विधि में शोधकर्ता कल्पना लोक से उतरकर नैसर्गिक घटना के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है तथा उसके निष्कर्षों से अधिक सुतथ्यता एवं वस्तुनिष्ठता रहती है। इसीलिये मोर्स ने लिखा है कि–संक्षेप में सर्वेक्षण किसी प्रस्तुत सामाजिक परिस्थिति, समस्या अथवा जनसंख्या की विशिष्ट उद्देश्यों के लिये क्रमबद्ध रूप से की हुई विवेचना की विधि मात्र है। सर्वेक्षण के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुये मोजर ने लिखा है कि–''सर्वेक्षण जनजीवन के किसी पहलू पर प्रशासकीय तथ्यों को एकत्र करने के लिये किया जा सकता है अथवा किसी कार्य–कारण सम्बन्ध की खोज के लिये किया जा सकता है।''

इस प्रकार सामाजिक सर्वेक्षण के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं, यथा–सामाजिक सिद्धान्तों का सत्यापन, व्यवहारिक सूचना प्रदान करना, उप–कल्पना की परीक्षा, सामाजिक घटना का वर्णन तथा कार्य–कारण सम्बन्ध का ज्ञान आदि।

International Journal of Education and Science Research Review
Volume-7, Issue-4 August- 2020, E-ISSN 2348-6457 P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का उपयोग करते हुये अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु प्रयास किया गया है। सर्वेक्षण विधि द्वारा पूर्व माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में कार्यरत हिन्दी के अध्यापकों से पूर्व माध्यमिक स्तर की हिन्दी पाठ्य–पुस्तकों के विषय में जानकारी प्राप्त की जायेगी। सर्वेक्षण के लिये प्रश्नावली विधि का प्रयोग अनुसंधानकर्ता द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये किया जायेगा।

उपकरण निर्माण विधि

प्रस्तुत शोध में पूर्व माध्यमिक स्तर की सामाजिक अध्ययन पाठ्य–पुस्तकों का मूल्यांकन करने की चेष्टा की गयी है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये ऐसे मापदण्डों की आवश्यकता हुई जिनकी सहायता से पाठ्यक–सामग्री का विभिन्न दृष्टिकोणों से मूल्यांकन किया जा सके। किसी पाठ्य पुस्तक के मूल्यांकन के लिये पाठ्य पुस्तक की शैक्षिक तथा बाह्य विशेषताओं के आधार पर मानदण्ड निर्धारित किये जाते हैं। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान ओर प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली द्वारा भी इन्हीं विशेषताओं के आधार पर कक्षा 1 से 4 तक की सामाजिक अध्ययन पाठ्य पुस्तकों के मूल्यांकन के लिये मूल्यांकन प्रपत्र तैयार किये गये हैं। इसी मूल्यांकन प्रपत्र के आधार पर इस शोध कार्य के लिये निम्नलिखित मानदण्ड निर्धारित किये गये हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है :–

,पाठ्य–पुस्तकों के मूल्यांकन के लिये मानदण्ड

1. **पुस्तक का यांत्रिक पहलू :** इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक का बाह्य स्वरूप, आकार, पृष्ठ संख्या, जिल्द, कागज की किस्म, छपाई की स्पष्टता, सज–धज तथा हाशिया आदि सम्मिलित हैं।
2. **पाठ्य–पुस्तक की व्यवस्था :** इस मानदण्ड के अनुसार पाठ्य–पुस्तक के भीतर विषय के विभाजन, उसकी श्रृंखला–बद्धता, तार्किकता, सारांश तथा अभ्यासार्थ प्रश्नों की व्यवस्था पर ध्यान दिया जाता हैं
3. **प्रस्तुतीकरण :** इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक की भाषा–शैली, उसमें प्रयुक्त शब्दावली, प्रतिपादन पद्धति, विषय की स्पष्टता एवं बोधग्राह्यता आदि निहित है।
4. **उदाहरण :** इसके अन्तर्गत चित्रों, रेखाचित्रों, मानचित्रों तथा चार्टों की शुद्धता, उपयोगिता, स्पष्टता, रोचकता, वस्तुनिष्ठता यथास्थानता तथा आकार आदि पर विचार किया जाता है। पाठ्य–पुस्तक के लिये ये अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
5. **अभ्यासार्थ प्रश्न :** प्रत्येक पाठ के अन्त में दिये गये अभ्यासार्थ प्रश्नों का विषय–वस्तु से सम्बन्ध, उनकी व्यापकता, प्रेरणात्मक शक्ति, स्पष्टता, शुद्धता, विश्वसनीयता तथा कठिनाई स्तर निर्धारित करना आवश्यक है। अभ्यासार्थ प्रश्नों का मूलयांकन इन्हीं दृष्टियों से किया जाता है।
6. **सहायक ग्रन्थों की सूची :** पाठ्य–पुस्तक में प्रस्तुत सहायक ग्रन्थों की सूची तथा निर्देशन की छात्रों तथा शिक्षकों की दृष्टि से उपयोगिता, उसकी व्यवहारिकता, निश्चितता, उपलब्धता, विश्वसनीयता एवं वैधता पर विचार करना परमावश्यक है।
7. **अनुक्रमणिका एवं विषय सूची :** इसके अन्तर्गत पाठ्य–पुस्तक के अन्दर दी हुयी विषय–सूची की पूर्णता, स्पष्टता, व्यवस्था, व्यवहारिक उपयोगिता तथा ससंगठन आदि पर ध्यान दिया जाता है।
8. **लेखक :** इसके अन्तर्गत लेखक की योग्यता, लेखन तथा शिक्षण अनुभव, व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा वर्तमान आदि पर विचार करना होता है।

इन मानदण्डों के आधार पर पुस्तकों की पाठ्य–वस्तु का विश्लेषण और पुस्तकों की उपयुक्तता का मूल्यांकन किया जायेगा। पूर्व माध्यमिक स्तर पर कार्यरत सामाजिक अध्ययन अध्यापकों कके मत प्राप्त करने के लिये शोधकर्ता द्वारा इन्हीं मानदण्डों पर आधारित प्रश्नावली तैयारी की जायेगी जिसमें शामिल प्रश्नों के प्राप्त उत्तरों का आंकलन करके पुस्तकों की उपयुक्तता सम्बन्धी मूल्यांकन किया जायेगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. **एण्डरसन, एन0 (1980)** स्केल्स एण्ड स्टैटिस्टिक्स : पैरामैट्रिक एण्ड नॉन पैरामैट्रिसाइकोलॉजीकल बुलेटिन, 58, 1961, 305–316 ।
2. **एण्डरसन, सी0 ए0, (1995)** शैक्षिक योजना से सम्बन्धित सामाजिक सम्बन्ध, पेरिस आई.आई.ई.पी.:यूनेस्को ।
3. **एल्शियन्स, ए0ए0, एण्ड एलन,डब्ल्यू0आर0, (2002)** यूनिर्वसिटी इकॉनोमिक्स वैड्सवर्थ।
4. **एस्टडी ऑन टीचर एबसेन्टिज्म इन एम0पी0 एण्ड यू0पी0 (2004)** डवलपमेन्ट एण्ड रिर्सच सर्विसेज, नई दिल्ली।

5. **एन0सी0 ई0आर0 टी0, (2004)** शिशु शिक्षा केन्द्र एवं उत्तर प्रदेश बेसिक एजूकेशन प्रोजेक्ट इनीशियेटिव इवैल्यूएशन रिपोर्ट, डिपार्टमेंन्ट ऑफ प्रीस्कूल एण्ड एलीमेन्ट्री एजूकेशन।
6. **एलन, के0 जी0 डी0 (2007)** मैथमैटिकल इकॉनोमिक्स, लन्दन : मैकमिलन।
7. **बासु, ए0 एन0, (2015)** भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा का विकास, कलकत्ता ।
8. **भागवल दयाल, (2011)** भारत में आधुनिक शिक्षा का विकास, बम्बई ।
9. **भटनागर, सक्सेना (2014)** भारत में शिक्षा का विकास, मेरठ।
10. **अहमद, मन्जूर, ए0के0जलालुद्दीन एण्ड के0 रामचन्द्रन, (2012)** बेसिक एजूकेशन एण्ड नेशन डवलपमेंट, न्यूयार्क, यूनिसेफ।
11. **आर्मिटेज, पी0. एण्ड स्मिथ,सी0., (2004)** शैक्षिक योजना में गणितीय मॉडल्स, पेरिस ओ.ई.जी.डी.यूनेस्को।